RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल–011/2015-17

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 75, अंक : 29 एक प्रति 2 : रुपये

रविवार 30 सितम्बर, 2018

विक्रमी सम्वत् 2075, सृष्टि सम्वत् 1960853119

दयानन्दाब्द : 194 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–75, अंक : 29, 27-30 सितम्बर 2018 तदनुसार 14 आश्विन, सम्वत् 2075 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

पाप का अपाकरण तुम जानते हो

लेo–स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

विदा देवा अघानमादित्यासो अपाकृतिम्।
पक्षा वयो यथोपरि व्य१स्मे शर्म यच्छतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः।।
–ऋ० ८।४७।२

शब्दार्थ–हे आदित्यासः = आदित्य देवाः = दिव्य गुणो! अथवा दिव्य गुण वाले महात्माओ! तुम अघानाम् = पापों का अपाकृतिम् = अपाकरण विद = जानते हो। यथा = जैसे वयः = पक्षी पक्षा = पक्षों को [अपने बच्चों के] उपरि = ऊपर [कर देते हैं] तद्वत् अस्मे = हमारे लिए शर्म = रक्षा, कल्याण, शरण वि+यच्छत = दो। वः = तुम्हारी ऊतयः = रक्षाएँ, प्रीतियाँ अनेहसः = त्रुटिरहित, निर्दोष हैं वः = तुम्हारी ऊतयः = रक्षाएँ, प्रीतियाँ ही सु-ऊतयः = उत्तम रक्षाएँ तथा प्रीतियाँ हैं।

व्याख्या–आदित्य देवों को ही पाप-नाश की युक्ति आती है, क्योंकि–

त आदित्यास उरवो गभीरा अदब्धासो दिप्सन्तो भूर्यक्षाः।
अन्तः पश्यन्ति वृजिनोत साधु सर्वं राजभ्यः परमा चिदन्ति।।
–ऋ० २।२७।३

वे विशाल, गम्भीर, दबंग, पाप को दबाने की इच्छा वाले और अपने आँखों वाले आदित्य पापों को भली प्रकार भीतर देखते हैं। अतः–'महि वो महतामवो वरुण मित्र दाशुषे। यमादित्या अभि द्रुहो रक्षथा नेमघं नशत्' [ऋ० ८।४७।१] हे वरुण! मित्र! अर्यमन् आदित्यो! तुम महापुरुषों की, दाता के लिए, बड़ी रक्षा और प्रीति हो। तुम उसे द्रोह से= हिंसा से बचाते हो और उसे पाप नहीं लगता। द्रोह से बचना पाप से बचना है। हिंसा सब पापों की जड़ है। वेद में बड़े सुन्दर शब्दों में उपदेश है–'सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा। मित्रः पान्त्यद्रुहः' [ऋ० ८।४६।४] निःसन्देह वह मनुष्य सुनीथ=उत्तम नीतिवाला है, जिसे मित्र, वरुण, अर्यमा हिंसा से बचाते हैं।

यदि मन-वचन-कर्म में हिंसा न रहे तो संसार में कोई भी वैरी न रहे। जैसा कि पतञ्जलि जी ने योगदर्शन में कहा है–'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः' [यो० द० २।३५]–अहिंसा के परिपक्व होने पर उसके समीप वैर का त्याग होता है। जब सबके प्रति ही प्रीति है, तब वैर को अवकाश कहाँ ? हमारे शास्त्र तो सब-कामों में अहिंसा को स्थान देते हैं–'अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम्' [मनु० २।१५९]–प्राणियों को कल्याणोपदेश भी अहिंसा के द्वारा ही करना चाहिए अर्थात् न किसी वैरभाव से और न ही घृणा की रीति से, वरन् परम प्रेम का अवलम्बन करके उपदेश करना चाहिए। श्रोता को विश्वास हो जाए कि यह उपदेष्टा मेरी मङ्गलकामना से मुझे मार्ग बता रहा है, तो वह सुनेगा, तब वह अपने दोषों को सुनकर उनका समर्थन न करेगा, वरन् अनुताप के अश्रुओं से उनके नाश का प्रयास करेगा, अतः आदित्यो! पक्षी अपने बच्चों की रक्षा के लिए जैसे उन पर अपने पर फैला देते हैं, वैसे तुम अपनी प्रीति-नीति के पर हम पर फैला दो। आपके उन प्रीतिरक्षा-पक्षों में सुरक्षित रहकर हम पाप के पाश से बचें रहें।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।
तस्मिन्निदꣳसं च विचैति सर्वꣳस ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु।।
–यजु० ३२.८

भावार्थ–ब्रह्मज्ञानी पुरुष, उस ब्रह्म को अपनी बुद्धिरूपी गुफा में स्थित देखता है, जो ब्रह्म सत्य होने से नित्य त्रिकालों में अबाध्य और सारे संसार का आश्रय है, यह सब जगत् प्रलय काल में जिसमें लीन होता और उत्पत्ति काल में जिससे निकलकर स्थूलरूप को प्राप्त होता है, और बने हुए सब जगत् में व्यापक, वस्त्र में ताने-पेटे के समान सर्वत्र भरा हुआ है। ऐसे ब्रह्म को ब्रह्मज्ञानी जानता और अनुभव करता हुआ कृतार्थ होता है।

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः।।
–यजु० ३४.५८

भावार्थ–हे सकल संसार के और वेद के रक्षक परमात्मन्! आप हमारी विद्या और सत्य व्यवहार के नियम करने वाले होवें। सारे संसार के मनुष्य जो आपके ही पुत्र हैं, उनके हृदय में वेदों में प्रेम और दृढ़ विश्वास उत्पन्न करें, जिससे वेदों को पढ़-सुनकर उनके कल्याणमय वैदिक ज्ञान से तृप्त हुए सारे संसार को तृप्त करें।

प्रनूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकꣳसि चक्रिरे।।
–यजु० ३४.५७

भावार्थ–जिस परमात्मा में, कार्य कारण रूप सब जगत् और जीव निवास कर रहे हैं, उन जीवों के कल्याण के लिए जिस दयामय परमात्मा ने मन्त्र भाग रूपी वेद बनाये, उन वेदों को पढ़ते-पढ़ाते सुनते-सुनाते हुए, हम लोग उस जगत्पिता परमात्मा को जानकर और उसी की भक्ति करते हुए, कल्याण के भागी बन सकते हैं अन्यथा कदापि नहीं।

अथर्ववेद में मानव रोग-चिकित्सा की औषधियाँ

ले.-मृदुला अग्रवाल 19, सी सरत बोस रोड, कोलकाता

''नेच्छत्रुः प्राशं जयति सहमानभिभूरसि।

प्राशं प्रतिप्राशो जह्यरसान् कृण्वोषधे।।''

-अथर्ववेद, काण्ड-२, सूक्त-२७, मन्त्र-१।।

भावार्थ-इस सूक्त में ''ओषधि'' के उदाहरण से बुद्धि का ग्रहण है। ''ओषधि'' का अर्थ निरूक्त-६।२७ में किया है ''ओषधियें ओषत्, दाह वा ताप को पी लेती है अथवा ताप में इनको पीते हैं, अथवा ये दोष को पी लेती है।'' मन्त्र का आशय जिस प्रकार शुद्ध परीक्षित औषधि के सेवन करने से ज्वर आदि रोग नाश होते हैं, ऐसे ही मनुष्य के बुद्धिपूर्वक, प्रमाण युक्त विवाद करने से बाहिरी और भीतरी प्रतिपक्षी हार जाते हैं। बुद्धिमानों ने बुद्धि को ''महौषधी'' बताया है, जिसके ज्ञान के उचित प्रयोग से मनुष्य पूर्ण आयु भोगता है। बुद्धिमान पुरूष अपने विचलित मन को चिकित्सक की भांति स्वयं ही ठीक कर सकता है।''अविद्या'' एक 'महारोग' है। मनुष्य अपने मानसिक व वाचिक दोष से विद्यादेवी को क्रोधित न करें बल्कि एक अद्वितीय परमात्मा की शरण लेकर श्रद्धापूर्वक अपनी न्यूनताएँ पूरी करें। परमेश्वर ने मनुष्य को बड़ी शक्ति दी है। सब प्राणियों में उसे ही सर्वश्रेष्ठ बनाया है। विद्या का रस सांसारिक मिष्टान्न आदि रोचक पदार्थों से बहुत रसीला अर्थात् लाभदायक और उपकारी होता है। ऐ सत्य में उत्पन्न होने वाली तापनाशक शक्ति तू ज्ञान का आस्वादन वा मिठास देकर मनुष्य को आत्मज्ञान से सम्पन्न कर और ''सत्य-धर्म'' में प्रवृत्त करके मानसिक एवं शारीरिक रोगों से मुक्त करा दे।''मनुर्वै यत्किञ्चावदत् तद् भैषजम्'' अर्थात् मनु ने जो कुछ कहा है वह भेषज-औषध के समान गुणकारी एवं कल्याणकारी है। औषध के सम्बन्ध में मनुस्मृति, श्लोक-४६ में लिखा है :-

''उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः।

ओषधयः फलपाकान्ता बहु-पुष्पफलोपगाः।।''

अर्थात् बीज और शाखाखण्ड से उत्पन्न होने वाले सब स्थावर, जीव, एक स्थान पर टिके रहने वाले वृक्ष आदि ''उद्भिज्ज'' भूमि को फाड़कर उगने वाले कहाते हैं। इनमें फल आने पर पककर सूख जाने वाले और जिन पर बहुत फूल-फल लगते हैं वे ''औषधि'' कहलाते हैं। प्राण और अपान वायु का संचार ठीक न होने से रुधिर जमकर रोग उत्पन्न होता है :-

''जंगिड'' (संचार करने वाला औषध) उत्तम औषध विशेष शरीर में प्रविष्ट होकर रुधिर का संचार करके रोग को मिटाता है। रोग के कारण जो शब्द में, इन्द्रियों में, बुद्धि में विकार होता है अर्थात् विचलित करने वाली निर्बलताओं को ''जंगिड औषध'' का सेवन अच्छा करता है। मनुष्य-जीवन के विघ्नों को जैसे व्याधि, भारीपन, द्विविधा, भूल, ढीलापन, जंजाल में फंस जाना, भ्रम व अज्ञान से कुछ का कुछ देखना, ठिकानें का न पाना, अदृढ़ता, चित्त की हलचलें आदि को ''जंगिड-औषध'' दबाता है। पीड़ाओं को (विशेषकर नीचे के जोड़ों की) एवं रोग-जन्तुओं का नाश करता है। विष्कन्ध (विशेष सुखाने वाले वात रोग) को और संस्कन्ध (सब शरीर में व्यापने वाले महावात रोग) को जंगिड-औषध दबाता है। प्लुरिसी (Pleurisy) और उसके ज्वर को ठीक करता है। आशरीक (शरीर कुचल जाने वाले रोग) को, विशरीक (शरीर तोड़ डालने वाले रोग) को, बलास (बल गिराने वाले सन्निपात आदि कफ रोग) को, पसली वा छाती की पीड़ा को, सारे शरीर में चकते करने वाले, जीवन को कष्ट देने वाले ज्वर को, कठोर हृदय वालों को, भयानक नेत्र वाले को, कुकर्म और कुपथ्य से उत्पन्न होने वाले रोगों को ''जंगिड'' का सेवन रोग निवृत्ति करता है एवं सारे रोग निष्प्रभाव हो जाते हैं। इसीलिये तत्त्वदर्शी वैद्यों ने वा ऋषियों ने परमेश्वर की सृष्टि में खोज लगाते-लगाते ''जंगिड-औषध'' को बड़ा अद्भुत माना है। सायणाचार्य ने ''जंगिड'' वृक्ष विशेष वाराणसी में प्रसिद्ध बताया है।

''अपामार्ग'' ओषधि का अर्थ ''सर्वथा संशोधक'' है। कुछ विद्वानों ने इस पौधे की पहचान ''औचिरेन्थीस अस्पेरा'' (auchyranthes aspera) की है। यह ओषधि कफ, बवासीर, उदर रोग और विष रोग का नाश करती है। यह ओषधि चिरकालिक रोगों को, महामारी रोगों के कीटाणुओं को, शरीर और आत्मा की दुर्बलताओं को, नींद में बेचैनी को, इन्द्रियों की हार को शोधन करती है। जैसे सूर्य अन्धकार को मिटाता है-प्रकाश देता है-वैसे ही ''अपामार्ग-औषधि'' सब पौधों की सम्राट के नाम से प्रसिद्ध है।

''अश्वत्थ'' पीपल का वृक्ष, दूसरे वृक्षों के खोखले, घरों की भीतों, और अन्य स्थानों में उगता है और बहुत गुणकारी है। खैर के वृक्ष पर उगने से अधिक गुणदायक हो जाता है। लोग बड़े आदर से पवित्र पीपल की चित्रप्रसादक छाया और वायु में सन्ध्या, हवन, व्यायाम आदि करते हैं और इसके दूध, पत्ते, फल, लकड़ी से बहुत सी औषधियाँ बनाते हैं। शब्दकल्पद्रुम कोष में इसको मधुर, कसैला, शीतल, कफ, पित्त विनाशी, रक्तदाह शान्तिकारक आदि और ''खदिर'' अर्थात् ''खैर'' को शीतल, तीखा, कसैला, दाँतों का हितकारी, कृमि, प्रमेह, ज्वर, फोड़े, कुष्ठ, शोथ, आम, पित्तर, रुधिर पांडु और कफ विनाशक आदि लिखा है। सद्वैद्य पीपल के प्रयोग से रोगों का नाश करके प्रजा में शान्ति रखता है।

''पाठा'' लता विशेष है जिससे तिक्तता, उष्णता, वात-पित्त, ज्वर-पित्त दाह, अतिसार, शूल नाशन आदि क्रियाएँ होती हैं।

''शतवार'' औषध जिसके नाम ''शतावरी'' और ''शतमूली'' भी है।

जो रोग शरीर की मलीनता से, पृथिवी और आकाश में जल, वायु की मलीनता से और जो एक दूसरे के लगाव से संक्रामक रोग उत्पन्न होते हैं, वैद्य लोग उनको ''शतवार औषध'' से नाश करते हैं। जब 'दाद' बवासीर के कारण होते हैं तो शतवार से उनके रोग-जन्तुओं को और खुजली को भी नष्ट किया जा सकता है। इससे बवासीर और छोटे-बड़े राजरोग को नष्ट किया जा सकता है। इसके सेवन से वीर्य पुष्ट होकर वीर संतान की उत्पत्ति होती है।

''गुग्गुल''-नदी वा समुद्र के पास वृक्ष विशेष का निर्यास अर्थात् गोंद होता है, जिसको अग्नि पर जलाने से सुगन्ध उत्पन्न होती है और अनेक प्रकार के रोगों को नष्ट करता है। जिस घर में गुग्गुल आदि सुगन्धित द्रव्यों की गन्ध की जाती है, वहाँ रोग नहीं होता। यह हवन की सामग्री में भी मिलाया जा सकता है।

''कुष्ठ'' वा ''कूट'' औषध-इसके दो नाम और भी है ''नद्यमार'' एवं ''नद्यरिष'' ये औषध हिम वाले ठण्डे देशों में होता है।

उसको प्राप्त करके ज्वर, दुखदायिनी पीड़ा, प्रतिवर्ष होने वाला ज्वर, सिर में पीड़ा करने वाले एवं सदा फूटन करने वाला ज्वर समाप्त किया जा सकता है। ''कुण्ठ'' महौषध विद्वानों के लिये बालकपन, यौवन और बुढ़ापे तीनों में सोमरस के समान गुणकारी है, स्वास्थ्यवर्द्धक है। इसको दिन में तीन बार सेवन करना चाहिये। नदी में उत्पन्न रोगों को यह मिटाता है। जहाँ नाव और यान अग्नि से चलते हैं वहाँ कुण्ठ औषध बड़ा उपकारी है।

''पिप्पली'' औषधि-विक्षिप्त, उन्मत्त की ओषधि, बड़े घाव वालों की ओषधि ज्वर, कुष्ठ, प्रमेह, गुल्म, अर्श, प्लीहा, शूल, आम आदि रोगों को नाश करती है। ये औषधि पृथिवी के अन्दर बोई और खोदी जाती है।

''अरूस्त्राणम् ओषध''-फोड़ों को पकाकर भरने वाला उत्तम ओषध पृथिवी से निकालकर लाया जाता है। महाक्लेश नाशक ब्रह्मज्ञान रूप ''औषध आस्त्रावस्य'' है, जो पृथिवी आदि के प्रायः सब पदार्थों में वर्त्तमान है।

साँप के विष का इलाज-साँप के विष हर या विष को प्रतिकार करने वाली ओषधि को ''तबूवम'' एवं ''तस्तुवम्'' कहते है। सद्वैद्य अपने शब्दों से, मेघ के समान गर्जन शक्ति से, अपने वचन से, आत्मबल बढ़ाकर अज्ञान का नाश करके विद्यारूपी सूर्य का प्रकाश करता है। विष से विष का नाश करता है। सर्प को मार डालता है। उसके विष को नाश कर देता है।

''आञ्जन-ओषधि''-से नेत्रों को भी ज्योति प्राप्त होती है एवं यक्ष्मा, पीलिया आदि भी ठीक होता है।

(शेष पृष्ठ 6 पर)

सम्पादकीय

स्वच्छ भारत का सपना कैसे साकार हो?

2 अक्तूबर 2014 को गांधी जयन्ती पर प्रधानमन्त्री द्वारा शुरू किए गए स्वच्छता अभियान के चार वर्ष पूर्ण होने वाले हैं। इन चार वर्षों में हमने इस स्वच्छता अभियान को कितना महत्त्व दिया है, अपने जीवन में अपनाया है इस पर विचार करने की आवश्यकता है। महर्षि मनु जी ने मनुस्मृति में शुद्धता से सम्बन्धित एक बहुत सुन्दर श्लोक का वर्णन किया है-

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मन: सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।।

अर्थात् जल से शरीर के बाहरी अंगों की शुद्धि होती है, मन की शुद्धि सत्य से होती है, विद्या और तप से आत्मा तथा ज्ञान के द्वारा बुद्धि शुद्ध होती है। स्वच्छता का यह अभियान भी तब तक पूरा नहीं हो सकता जब तक मनुष्य के मन का तथा बुद्धि का कचरा बाहर नहीं निकलेगा। जब तक हम केवल स्वार्थ या राजनीति के लिए इस अभियान को चलाएंगे तब तक यह अभियान पूर्ण नहीं हो सकता। इन चार वर्षों के अन्तराल में स्वच्छता के अभियान को जितना महत्त्व देना चाहिए था उतना नहीं दिया गया। जितने उत्साह और उमंग के साथ इस अभियान को शुरू किया गया था उतनी ही जल्दी इस अभियान से किनारा किया गया है। जब इस अभियान को शुरू किया गया था तो बड़े-बड़े नेताओं से लेकर अभिनेताओं तक के हाथ में झाड़ू दिखाई देता था और सड़कों, गलियों और चौराहों पर सफाई करते थे। परन्तु स्वच्छता केवल हमारे लिए अभियान नहीं, दिखावा नहीं बल्कि हमारा स्वभाव होना चाहिए। इस स्वच्छता को हमने केवल एक अभियान के रूप में नहीं देखना है जो कुछ समय के पश्चात खत्म हो जाए। इस स्वच्छता को हमने अपने जीवन का स्वभाव बनाना है। यह अभियान किसी को दिखाने के लिए नहीं, फोटो खिंचाने के लिए नहीं, राजनीति से प्रेरित नहीं अपितु राष्ट्रहित को सामने रखकर होना चाहिए। इन चार वर्षों में हमने स्वच्छता के ऊपर कितना ध्यान दिया है, यह प्रश्न विचारणीय है?

स्वच्छता हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। स्वच्छता के बिना मनुष्य अनेक प्रकार की बीमारियों से ग्रसित हो जाता है। इसीलिए जहां स्वच्छता है वहीं पवित्रता का वास है। संसार के सभी प्राणियों में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। मनुष्य का यह दायित्व है कि वह अपने आसपास के वातावरण को स्वच्छ एवं सुरक्षित रखें। अगर वातावरण स्वच्छ होगा तो मनुष्य का जीवन भी स्वस्थ और नीरोग होगा, उसके मन एवं विचारों पर स्वच्छ वातावरण का सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। इसके विपरीत गंदगी में जीने वाले लोगों का जीवन नरक के समान हो जाता है। गंदगी का मनुष्य के शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ उसके मन एवं विचारों पर भी प्रतिकूल प्रभाव होता है। गंदगी में जीने वाले लोग अनेक प्रकार की आधि-व्याधियों से ग्रसित हो जाते हैं। इसीलिए संसार का सबसे बुद्धिमान प्राणी होने के नाते मनुष्य को अपने आसपास के वातावरण का ध्यान रखना चाहिए। उसके घर के आसपास व स्वयं उसके द्वारा कोई ऐसा कार्य न किया जाए जिससे वातावरण पर प्रभाव पड़े।

स्वच्छता के इस अभियान को पूर्ण करने के लिए हमें शैक्षणिक संस्थानों, स्कूल, कॉलेजों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। बच्चों को स्वच्छता के प्रति जागरूक करने के लिए समय-समय पर जागरूकता संबंधी शिविरों का आयोजन किया जाना चाहिए। माता-पिता और अध्यापकों सभी का कर्त्तव्य बनता है कि वे बच्चों को सफाई के प्रति जागरूक करें। बच्चों को कूडेदान का इस्तेमाल करना सिखाएं। उनकी छोटी-छोटी आदतों को सुधारने का प्रयास करें। स्कूल में, अपने घर में, रास्ते में किसी प्रकार की कोई गंदगी न करना बच्चों का स्वभाव होना चाहिए। स्कूल में बच्चों की प्रत्येक गतिविधियों पर नजर रखनी चाहिए। बच्चों को बताना होगा कि टॉफी खाकर उसका कागज इधर-उधर फैंकने के बजाय कूड़ेदान में डालना चाहिए, मूंगफली खाकर उसके छिलके को इकट्ठा करके कूड़ेदान में डाले तथा केले का छिलका भी कूडेदान में डाले क्योंकि इससे जहां गंदगी फैलती है वहीं अगर किसी के पांव के नीचे आ जाए तो गिर भी सकते हैं। ये बच्चों के प्रतिदिन के कार्य हैं। अगर बच्चे इन कार्यों में स्वच्छता को अपना लें तो हमारा स्वच्छता का लक्ष्य पूरा हो सकता है। बच्चों को बचपन से ही इन कार्यों की आदत होनी चाहिए। आज यह आवश्यक है कि सार्वजनिक सफाई बच्चों के पाठयक्रम का व्यवहारिक हिस्सा बनें। अन्य विषयों के साथ-साथ बच्चों को सफाई के लिए जागरूक करते रहें।

भारत को स्वच्छ बनाने के लिए बाहर की गंदगी से ज्यादा अन्दर की गन्दगी जो मनुष्य के अन्दर जम चुकी है, उसे साफ करने की आवश्यकता है। जिस व्यक्ति के मन में यह बात बैठ गई है कि सफाई करना शान के खिलाफ है, सफाई करने से उसी की इज्जत घट जाएगी, ऐसा व्यक्ति कभी भी इस अभियान को नहीं अपनाएगा। कूड़ा इकट्ठा करके सड़क पर फैंकना जिस आदमी का स्वभाव बन गया है उसमें बदलाव लाना सबसे कठिन कार्य है। प्रधानमन्त्री ने स्वच्छ भारत को बनाने का जो लक्ष्य रखा था वह कठिन अवश्य था लेकिन असम्भव नहीं। स्वच्छता अभियान एक ऐसा अभियान है जिसमें किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए। स्वच्छता राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक के लिए आवश्यक है। दुनिया के दूसरे देशों को देखकर हमें ग्लानि होती है कि काश हमारा देश भी ऐसा ही साफ सुथरा होता। इस स्वच्छता अभियान को अपनाने से भारत को इतने लाभ होंगे कि इनकी गिनती करना मुश्किल होगा। इस समय भारत के आर्थिक विकास के लिए जो बात सबसे अधिक जरूरी है वह यह है कि विदेशी निवेश को आकर्षित किया जाए। लेकिन इसके लिए स्वच्छता जरूरी है। प्रधानमन्त्री ने 2 अक्तूबर 2014 को कहा था कि यदि भारत स्वच्छ होता है तो डब्ल्यूएचओ के अनुसार प्रति व्यक्ति वर्ष में साढे छह हजार रूपये की बचत कर सकेगा क्योंकि स्वच्छता के कारण बीमारियों पर होने वाला खर्च कम हो जाएगा। सभी को वित्तीय रूप से इसका कुछ न कुछ लाभ अवश्य होगा। भारत का गौरवपूर्ण इतिहास है और इसकी संस्कृति काफी पुरानी है। इसे देखने समझने के लिए बड़ी तादाद में विदेशी पर्यटक भारत आना चाहते हैं, लेकिन गंदगी की वजह से यहां आने से कतराते हैं। सिंगापुर थाईलैंड जैसे देशों की अर्थव्यवस्था उनके पर्यटन की वजह से चल रही है, लेकिन हमारे यहां पर्यटक दिन प्रतिदिन कम होते जा रहे हैं।

राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक के लिए स्वच्छता सिर्फ एक अभियान नहीं, बल्कि उसके जीवन का स्वभाव होना चाहिए। जब तक हम स्वच्छता को अपना स्वभाव नहीं बनाएंगे तब तक हम स्वच्छ भारत की कल्पना नहीं कर सकते। यह उचित नहीं कि हम सफाई के विषय पर घंटों भाषण देते रहें और मुंह में गुटका, पान तम्बाकू चबाते रहे और पीक थूकते रहें और सरकार को कोसते रहें। अपने घर में सफाई रखें लेकिन घर का कूडा नाली में, पड़ोसियों के दरवाजे अथवा गली में फैंककर हम सभ्य नहीं हो सकते। पुण्य से अधिक यश की कामना के लिए भंड़ारे करने वालों को भी सफाई का ध्यान रखना चाहिए। सफाई के प्रदर्शन से हजार गुणा श्रेष्ठ है गंदगी न करने का स्वभाव बनाना। सरकारी और गैर सरकारी प्रयासों के द्वारा लोगों में यह भावना जरूर पैदा की जानी चाहिए और जागरूकता लाई जानी चाहिए कि सफाई बेहद महत्वपूर्ण काम है। हमें सबसे पहले अपने स्वयं से, अपने परिवार से, अपने मोहल्ले से, अपने गांव से और अपने कार्यस्थल से इसे आरम्भ करना होगा। ऐसे अभियान मात्र शुरूआत हैं, अन्तिम लक्ष्य नहीं। यदि हम इस अभियान को अपना, अपने बच्चों तथा पूरे परिवार का स्वभाव, आदत बना लें तभी स्वच्छ भारत के लक्ष्य तक पहुंचा जा सकता है। यह अभियान एक दिन के लिए नहीं, एक महीने के लिए नहीं, एक वर्ष के लिए नहीं बल्कि यह तो निरन्तर चलने वाला अभियान है।

इस अभियान को प्रारम्भ हुए चार वर्ष हो गए हैं। इन चार वर्षों में स्वच्छ भारत का स्वप्न कितना साकार हुआ और अगर यह मिशन अपने लक्ष्य की ओर नहीं बढ़ा तो इसके पीछे क्या कारण है। आज भी देश में जगह-जगह पर गंदगी के ढ़ेर दिखाई देंगे जो स्वच्छता मिशन की पोल खोल रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में हमें विचार करना है कि इस अभियान को पूर्ण क्रियान्वयन करने के लिए क्या कदम उठाए जाने चाहिए? जिस उत्साह के साथ इस अभियान को प्रारम्भ किया था उसका कुछ प्रभाव तो जनता पर पड़ा है, लोगों में सफाई के प्रति जागरूकता उत्पन्न हुई है। खुले में शौच करना कम हुआ है और लोगों ने शौचालय निर्माण के कार्य में रूचि दिखाई है। परन्तु अभी भी बहुत कुछ करना बाकी है। जब तक इस अभियान को राजनीति करने के मकसद से चलाया जाएगा या दूसरे दल इसे राजनीतिक अभियान समझकर सहयोग नहीं करेंगे, तब तक इस अभियान को पूरा नहीं किया जा सकता और स्वच्छ भारत देखने का स्वप्न साकार नहीं हो सकता।

प्रेम भारद्वाज
सम्पादक एवं सभा महामन्त्री

यजुर्वेद में पुरुष सूक्त

ले.-शिवनारायण उपाध्याय, 73 शास्त्री नगर दादाबाड़ी, कोटा

यजुर्वेद अध्याय 31 में कुल 22 मन्त्र हैं। इन मन्त्रों में से कुछ मन्त्रों में तो परब्रह्म परमेश्वर के स्वरूप का वर्णन हुआ है तथा कुछ मन्त्रों में सृष्टि उत्पत्ति का क्रमिक वर्णन है। जब इन मन्त्रों का सस्वर पाठ होता है तो वातावरण में एक समां सा बन्ध जाता है। सभी श्रोता मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं। सारी सृष्टि ठहर सी जाती है। परमेश्वर के स्वरूप और गुणों का कीर्तन मनुष्य के मन को मोह लेता है। इन मन्त्रों का अर्थ कोई जाने या न जाने परन्तु मन्त्रों के गाने के प्रभाव से अछूता नहीं रह पाता है। अब हम इन मन्त्रों के द्वारा परमात्मा तथा उसके द्वारा सृष्टि को कुछ जानने का प्रयत्न करते हैं। वेद की यह मान्यता है कि परमात्मा सृष्टि की रचना के साथ ही उसमें प्रवेश कर जाता है। परन्तु उस विराट् पुरूष के सामने यह सृष्टि इतनी लघु है कि उसका अधिकाँश भाग सृष्टि के बाहर ही रहता है। चूंकि वह सर्वव्यापक है अत: कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है जिसमें ईश्वर नहीं है। इसलिए उपनिषदों में यह कहा गया है कि सम्पूर्ण सृष्टि उसका सत्रूप हैं। सृष्टि के बाहर से उसका भाग 'त्यत्' कहलाता है। उस परमात्मा को केवल इस सृष्टि के द्वारा पूर्ण रूप से नहीं जाना जा सकता है। उसे उसके 'त्यत्' रूप से भी पूर्ण रूपेण नहीं जान सकते हैं। उसे जानने के लिए 'सत्' रूप सृष्टि और 'त्यत्' रूप सृष्टि के बाहर दोनों को जानना होता है। उपनिषद में कहा गया है कि सत् में से 'स' और 'त्यत्' में से 'त्य' को मिलाकर ही तो 'सत्य' शब्द की सिद्धि होती है। आओं अब हम पुरुष सूक्त का अध्ययन कर सत्य को जानने का प्रयत्न करें।

सहस्त्रशीर्षा पुरूषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रापात्।
स भूमिँ सर्वत स्पृत्वाऽ-त्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम्।।1।।

पदार्थ-हे मनुष्य। जो (सहस्त्र-शीर्षा) सब प्राणियों के हजारों सिर (सहस्त्राक्षः) हजारों नेत्र और (सहस्त्रपात्) असंख्य पैर वाला ऐसा (पुरूषः) सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक परमेश्वर हैं। ऐसा इसलिए है कि वह सब प्राणियों में व्याप्त है। (सः) वह (सर्वत्र) सब जगह (भूमिम्) भूमि में (स्पृत्वा) सब ओर से व्याप्त होकर (दशाङ्गुलम्) पांच स्थूल भूत और पांच सूक्ष्म भूत जिनसे प्राणी मात्र का शरीर बनता है उस समस्त जगत् को (अति अतिष्ठत्) उल्लंघन कर स्थिर होता अर्थात् इन सबसे पृथक् भी होता है। वास्तव में यह सृष्टि उसका व्यक्त रूप है। सृष्टि का उपादान कारण तो प्रकृति है परन्तु इसका निमित्त कारण परमेश्वर है। वही प्रलय के अन्त में सत्व. रज. तम की साम्यावस्था में उसे गति देकर उसमें विकार उत्पन्न कर उससे सृष्टि की क्रमश: उत्पत्ति करता है। वेद इस विचार को बड़े सुन्दर ढंग से प्रकाशित करता है।

पुरूषऽएवेदँ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेना-तिरोहति।।2।।

पदार्थ-(हे मनुष्यों) (यत्) जो (भूतम्) उत्पन्न हुआ (च) और (यत्) जो (भाव्यम्) उत्पन्न होने वाला (उत) और (यत्) जो (अन्नेन) अन्न आदि के द्वारा (अतिरोहति) अत्यन्त बढ़ता है उस (इदम्) इस प्रत्यक्ष परोक्ष रूप (सर्वम्) समस्त जगत् को (अमृतत्वस्य) अविनाशी मोक्ष रूप अथवा कारण का (ईशानः) अधिष्ठाता (पुरूषः) सत्य, गुण कर्म और स्वभाव से पूर्ण पर ब्रह्म परमात्मा (एव) ही रचयिता है।

यह सम्पूर्ण दृष्ट और अदृष्ट सृष्टि परमात्मा के महत्व को बताने वाली है। व्यक्त और अव्यक्त सृष्टि ही उसका लिङ्ग है। यह सम्पूर्ण चराचर जितना जगत् है वह सब परमात्मा के एक चतुर्थ अंश में ही रहता है।

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँ-श्च पूरूषः।
पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।।3।।

पदार्थ-(हे पुरूषों) (अस्य) इस पर ब्रह्म परमेश्वर का (एतावान्) यह दृश्य अदृश्य ब्रह्माण्ड (महिमा) महत्व सूचक है। (अतः) इस ब्रह्माण्ड से यह (पुरूषः) पूर्ण परमात्मा (ज्यायान्) अति प्रशंसित और बड़ा है। (च) और (अस्य) इस ईश्वर के (विश्वा) सब (भूतानि) पृथ्वी आदि चराचर जगत् एक (पादः) अंश है और (अस्य) इस जगत् सृष्टा का (त्रिपाद्) तीन अंश (अमृतम्) नाश रहित महिमा (दिवि) द्योतनात्मक अपने स्वरूप में है। जैसा कि पूर्व में कहा गया है कि सृष्टि तो उसका एक छोटा सा सूचना देने वाला 'सत' भाग है, उसका तीन चौथाई भाग तो बाहर है।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरूषः पादो-स्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशना-नशनेऽअभि।।4।।

पदार्थ-पूर्वोक्त (त्रिपात्) तीन अंशों वाला (पुरूषः) पालक परमेश्वर (ऊर्ध्वः) सर्वोत्तम मुक्ति स्वरूप संसार से पृथक् (उत् ऐतु) उदय को प्राप्त होता है। वास्तव में सृष्टि को उत्पन्न करने पर ही उसका भी ज्ञान होता है, विद्वान् लोग व्यक्त सृष्टि से उसके उत्पन्न करने वाले पर ब्रह्म को जानने का प्रयत्न करते हैं। (अस्य) इस पुरूष का (पादः) एक भाग (इहः) इस जगत् में पुनः बार बार उत्पत्ति प्रलय के चक्र से (अभवत्) होता है। (तत्) इसके उपरान्त (साशनानशने) खाने वाले चेतन और न खाने वाले जड़ इन दोनों के (अभि) प्रति (विष्वङ्) सर्वत्र प्राप्त होता हुआ (वि अक्रामत्) विशेष रूप से व्याप्त होता है।

ततो विराडऽजायत विराजोऽ-अधिपूरूषः।
सजातोऽअत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः।।5।।

पदार्थ-(हे मनुष्यों) (तत्) उस पूर्ण परमात्मा से (विराट्) विराट् ब्रह्माण्ड रूप संसार (अजायत) उत्पन्न होता है। (विराट्) विराट् संसार के (अधि) ऊपर अधिष्ठाता (पुरूषः) परिपूर्ण परमात्मा होता है। (अथो) इसके अनन्तर (सः) वह पुरूषः (पुरः) पहिले से (जातः) प्रसिद्ध हुआ (अति अरिच्यत्) जगत् से अतिरिक्त होता है। इसलिए उसे शेष या उच्छिष्ट भी कहा जाता है। (पश्चात्) इसके पीछे (भूमिम्) पृथ्वी को उत्पन्न करता है। यहाँ ध्यान दें कि पृथ्वी सृष्टि के उत्पन्न होने के प्रारम्भ से बहुत देर बाद उत्पन्न होती है।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशुंस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये।।6।।

पदार्थ-(तस्मात्) उस परमात्मा से (सर्वहुतः) जो सब से ग्रहण किया जाता उस (यज्ञात्) पूजनीय पुरूष परमात्मा से सब (पृषदाज्यम्) दध्यादि भोगने योग्य वस्तु (सम्भृतम्) सम्यक सिद्ध उत्पन्न हुआ। (ये) जो (आरण्याः) वन के सिंह आदि (च) और (ग्राम्या) ग्राम में रहने वाले गौ, अश्व आदि पशु है, (तान्) उन (वायव्यान्) वायु के तुल्य गुण वाले (पशून्) पशुओं को जो (चक्रे) उत्पन्न करता है उसको हम जाने। फिर इसी विषय को आगे बढ़ाते हुए कहा गया है-

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाँसि जज्ञिरे तस्माद्य-जुस्तस्मादजायत्।।7।।

पदार्थ-जब पशुओं की उत्पत्ति के अनन्तर मनुष्य उत्पन्न हो गये तब (तस्मात्) उस पूर्ण (यज्ञात्) अत्यन्त पूज्य (सर्वहुतः) जिसके लिए सब लोग समस्त पदार्थों को देते व समर्पण करते उस परमात्मा से (ऋचः) ऋग्वेद (सामानि) सामवेद (जज्ञिरे) उत्पन्न होते हैं। (तस्मात्) उस पुरूष से ही (छन्दांसि) अथर्ववेद (जज्ञिरे) उत्पन्न होता है और (तस्मात्) उस परमात्मा से ही (यजुः) यजुर्वेद (अजायतः) उत्पन्न होता है।

तस्मादश्वाऽअजायन्त ये के चाभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जा-ताऽअजावयः।।8।।

पदार्थ-जीवों की उत्पत्ति का क्रम फिर भी चलता रहता है। (तस्मात्) उसी पर ब्रह्म परमेश्वर से (अश्वाः) घोड़े तथा (ये) जो (के) कोई (च) गदहा आदि (उभयादत) दोनों ओर ऊपर नीचे दातों वाले प्राणी हैं। अजायन्त) उत्पन्न हुए हैं। (तस्मात्) उसी पुरूष से (गावः) गौवें (यह एक ओर दांत वाले पशुओं का उपलक्षण है) आदि (ह) निश्चय करके (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए और (तस्मात्) उस परब्रह्म परमात्मा से ही (अजायवः) बकरी, भेड़ आदि (जातः) उत्पन्न हुए हैं इस प्रकार जानना चाहिए।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरूष जातमग्रतः।
तेन देवाऽअयजन्त साध्याऽऋषयश्च ये।।9।।

पदार्थ-उत्पत्ति का क्रम आगे इस प्रकार चलता है। (ये) जो (देवाः) विद्वान् (च) और (साध्याः) साधना करने वाले साधक लोग (ऋषयः) मन्त्रार्थ जानने वाले ज्ञानी लोग जिस (अग्रतः) सृष्टि से पूर्व (जातम्) प्रसिद्ध हुए (यज्ञम्) सम्यक् पूजने योग्य (पुरूषम्) पूर्ण परमात्मा को (बर्हिषि) मानस ज्ञान यज्ञ में (प्रओक्षन) धारण करते हैं वे ही (तेन) उसके उपदेश किये हुए वेद से (अजयन्त) उसको पूजते हैं। परमेश्वर के विराट् रूप से सम्बन्धित अगले दो मन्त्र हैं।

(क्रमशः)

नैतिकता का सर्वोच्च वैदिक आदर्श

प्रो.-कमलेश कुमार छ. चोकसी संस्कृत विभाग, भाषासाहित्यभवनम्, गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद

(गतांक से आगे)

उपर्युक्त मन्त्र में मन की जिस गति का वर्णन है, उसकी दिशाऐं विभिन्न है। इन विभिन्न दिशाओं को निर्विवाद रूप से अच्छी दिशा तथा बुरी दिशा के रूप में दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। इनमें जो अच्छी दिशा है, वही नीति या नैतिकता है और जो बुरी दिशा है वही, अनीति या अनैतिकता है।

परन्तु, अच्छी दिशा तथा बुरी दिशा के स्वरूप का निर्धारण कैसे हो? यह समस्या है। इस समस्या का समाधान हम स्वतन्त्र रूप से विचारने बैठेगें तो बड़ा मुश्किल कर्म होगा। क्योंकि एक तो मानवीय मन की गति की दिशाओं को निर्धारित करना ही मुश्किल है और फिर उनमें अच्छी-बुरी का निर्धारण करना तो और भी मुश्किल कार्य है। परन्तु यदि हम उपर्युक्त मन्त्र को ध्यान में रख कर विचार करेंगे, तो यह मुश्किल काम आसान हो जायेगा।

इस उपर्युक्त सन्दर्भ में आगे कुछ विचार करें, उससे पहले मानव के द्वारा आचरण में लायी जाने वाली उन छः क्रियाओं की ओर भी दृष्टि कर लेनी आवश्यक है, जिन्हें निरुक्तकार ने किसी प्रसंग में षड्भावविकार के रूप में उपदिष्ट किया है। आचार्य यास्क के अनुसार मानव जीवन की प्रथम क्रिया 1. जायते अर्थात् उत्पन्न होना है। उत्पन्न होने के बाद अस्तित्व की सूचक 2. अस्ति क्रिया आती है। तदनन्तर (3. विपरिणमते) विपरिणाम की प्रक्रिया होती है। ये तीन क्रियाएं थोड़े से नियत समय में सम्पन्न हो जाती है। फिर आती है 4. वर्धते क्रिया। इस क्रिया को सम्पन्न करने के लिये मानव को काफी लम्बा काल प्राप्त होता है।

निरुक्तकार यास्क का मानना है कि मानव के द्वारा की जाने वाली यह वृद्धि क्रिया दो प्रकार से सम्पन्न होती है। वर्धते इति स्वाङ् गाभ्युच्चयं यांयोगिकानाम् वा अर्थानाम्। अर्थात् एक तो शरीर से तथा दूसरी सांयोगिक अर्थो से।

इसका आशय यह है कि मानव अपने विभिन्न क्रियाकलापों को करते हुए एक ओर अपने शरीर का विकास करता है, तो दूसरी ओर ज्ञान, धन-धान्य, यश आदि अपने से जुड़े हुए विभिन्न पदार्थो की प्राप्ति करता हुआ अपना सांयोगिक विकास करता है। अर्थात् विकास की इस प्रक्रिया में मानव शारीरिक तथा सांयोगिक अनेकानेक पदार्थो का स्वामी बनता है।

अब प्रश्न यह होता है कि अपने स्वामित्व वाले इन पदार्थों के प्रति मानव के मन की जो गति होगी, उसकी दिशा क्या हो ? क्या उन पदार्थों के भोग की दिशा में मानव मन गति करे ? या फिर उन पदार्थो के संग्रह तथा संरक्षण की दिशा में मानव मन की गति हो ? या फिर कोई भी दिशा है, जिस ओर मानव का मन गति करे ?

इन्हीं प्रश्नों की पृष्ठभूमि पर मानव मन की गति की जो संभावित विभिन्न दिशाएं हैं, उनमें से किस दिशा को नीति या नैतिकता का दर्जा दिया जाए और इसकी विपरीत किस दिशा को अनीति या अनैतिकता का दर्जा दिया जाए ? यह भी विचारणीय बनता है।

हमारे विचार से उपर्युक्त मन्त्र में इन्हीं प्रश्नों के उत्तर दिये गये हैं। जैसा कि उक्त मन्त्र का अर्थघटन करते हुए आचार्य सायण ने कुछ लोगों को अल्पप्रज्ञ, कुछ लोगों को मध्यमप्रज्ञ तथा कुछ लोगों को महाप्रज्ञ बताया है। यह भेद उन-उन मानवों के मन की गति की, दिशा की विभिन्नता के कारण से ही खड़े होते हैं।

मानवीय मन की गति की इन विभिन्न दिशा के आधार पर भारतीय संस्कृति ने मानव समाज के समक्ष त्रिविध नीतियां रखी है। प्रथम नीति है पदार्थो के भोग की। द्वितीय नीति है पदार्थो के भोग तथा संग्रह-संरक्षण की तथा तृतीय नीति है पदार्थों के त्याग की, दान की। इनमें जो अल्पप्रज्ञ मानव हैं, वे भोग की दिशा में अपने मन को प्रवृत करते हैं जो मध्यमप्रज्ञ मानव हैं, वे कुछ मात्रा में भोग तथा कुछ मात्रा में संग्रह की दिशा में अपने मन की गति करते-कराते हैं। जबकि महाप्रज्ञ मानव अपने स्वामित्व के पदार्थो को त्यागने, दान देने की दिशा में अपने मन को गतिमान करते हैं। मानव मन की जो यह तीसरी गति है, वही मानवीय नैतिकता का सर्वोच्च आदर्श है।

भारी तप तथा श्रम के द्वारा विविध पदार्थो को प्राप्त करके मानव आज जिन पदार्थो का स्वामी बना है, उन पदार्थों में से बहुत ही थोड़े से पदार्थो को अपने भोग के लिये स्वीकार करता है और शेष पदार्थो के प्रति वह 'इदं न मम' की भावना करता है। इसी भावना से प्रेरित हो कर वह दूसरों के (सभी मानवों के तथा सभी प्राणियों के) सुख के लिये उन्हें सहर्ष समर्पित कर देता है। इसी समर्पणभाव को वैदिक संस्कृति की दृष्टि में सर्वोच्च नैतिकता का आदर्श माना गया है।

कठिन परिश्रम करते हुए अपने मन की गति उन पदार्थो की प्राप्ति के प्रति रखना तथा विविध पदार्थो की प्राप्ति करते हुए अपनी सांयोगिक वृद्धि करते रहना, यह प्रथम चरण है इस प्रथम चरण में सभी समान होते हैं। परन्तु इस प्रथम चरण की समाप्ति के बाद मानव के मन की गति की त्रिविध दिशाएं हैं, जिनका वर्णन उपर्युक्त मन्त्र में 1. आदध्नासः, 2. उपकक्षासः तथा 3. स्नात्वा, इन तीन शब्दों से किया गया है। वेद के मन्त्र में प्रयुक्त इन शब्दों का अर्थघटन करते हुए आचार्य सायण ने क्रमशः 1. मध्यमप्रज्ञ, 2. अल्पप्रज्ञ तथा 3. महाप्रज्ञ-ये तीन शब्द दिये हैं। हमारे मत से यहाँ मध्यमप्रज्ञ का आशय उन लोगों से है जो अपने स्वामित्व के पदार्थो को आधा भोगते हैं, और आधा अपनी पसंदगी के लोगों को बांटते हैं। जबकि अल्पप्रज्ञ का आशय उन लोगों से है जो अपने स्वामित्व के पदार्थो को मात्र और मात्र अपने ही लिये प्रयोग में लाते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो, अपने पदार्थो को स्वार्थ के लिये ही भोगते रहना अल्पप्रज्ञता है। ऐसे लोग दूसरों के लिये अपने पदार्थो के प्रयोग की कभी कल्पना भी नहीं करते हैं। इन दो प्रकार के मनुष्यों से ऊपर एक तीसरे प्रकार के लोग होते हैं, जिन्हें महाप्रज्ञ कहा गया है। ये लोग अपने स्वामित्व के पदार्थो को अपने लिये बहुत ही अल्प प्रमाण में उपयोग में लाते हैं। जबकि अधिक प्रमाण में तो वे दूसरे लोगों के लिये, प्राणियों के उपभोग के लिये स्वेच्छा से त्याग देते हैं। अपने परिश्रम से प्राप्त किये हुए पदार्थो का स्वयं का स्वामित्व होते हुए भी उन पदार्थो के प्रति अपने स्वामित्व का परित्याग करना, ममत्व का त्याग करना साधारण बात नहीं है। इस प्रकार से अपने पदार्थो का स्वेच्छा से त्याग करते हुए, बिना किसी भेदभाव के प्राणिमात्र के उपयोग के लिये समर्पित कर देना यही मानव की महाप्रज्ञता है।

आशय यह है कि प्रथम चरण में मानव मात्र का व्यवहार समान रहता है, इसलिये वह सर्वत्र समान दिखाई देता है। परन्तु जब द्वितीय चरण आता है, तब मानवमात्र अपने अपने मन की भिन्न-भिन्न गति के कारण विभक्त हो जाता है। इस भेद की स्थिति में महाप्रज्ञ के मन की गति की जो दिशा है, वही मानव जीवन की सर्वोत्तम नीति स्वीकार की गई है, और इसी नीति से मानव जीवन जीना ही वैदिक भारतीय मानव समाज की दृष्टि में नैतिकता का सर्वोत्तम आदर्श है।

रामायण, महाभारत आदि में नैतिकता के आचरण के कदम-कदम पर दर्शन होते हैं। राम ने अतीव संघर्ष करके बाली को जीता, पर विजय हो जाने पर जीते हुए राज्य को सुग्रीव को समर्पित कर दिया। लंकाविजय के बाद राम ने प्राप्ति के अनन्तर त्याग की इसी नैतिकता का आचरण करते हुए विभीषण को लंका का राज्य दे दिया। महाभारत में जरासंघ वध करके जिस समृद्ध राज्य की युधिष्ठिर, भीम ने प्राप्ति की, उसे स्वयं अपने भोग के लिये न रख कर, उन-उन राजाओं के उत्तराधिकारियों को दे दिया। महाभारत के प्रचण्ड युद्ध रूपी दिशा में अपने मन की गति करने वाले युधिष्ठिर युद्ध के बाद प्राप्त विजय को अपने भोग के लिये न रख कर, अपने उत्तराधिकारियों को राज्य समर्पित करते हुए इसी नैतिकता का जीवन जीते हैं और लोगों को ऐसा जीवन जीने का आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

अधिक क्या कहें, परिश्रम से कमाये गये धन का मात्र अपने ही लिये उपयोग में लेने वाले आज के मानव समुदाय को यदि इस एक नीति पर चलने के लिये तैयार कर दिया जाए, तो समग्र मानव समाज एक समान रूप से विकास कर सकता है और सुख, शान्ति, आनन्द की प्राप्ति कर सकता है। अत्यन्त संक्षेपतः कहना हो तो मानव समाज में सर्वत्र सुख, शान्ति तथा विकास के लिये यदि किसी एक नीति का निर्धारण करना हो, तो वह नीति महाप्रज्ञ की नीति है। 'इदं मम' के होने पर भी स्वयं स्वीकृत भावनारूप 'इदं न मम' की नीति है।

इसी एकमात्र नीति को नैतिकता का सर्वोच्च वैदिक आदर्श माना जाता रहा है। आज सुख के साधनों की प्रचुर उपलब्धता के होने पर भी आज के मानव समाज में इस नैतिकता के अभाव के कारण मानव समाज सम्पूर्ण रूप से सुखी नहीं दिखाई देता है। यदि नैतिकता के इस सर्वोच्च वैदिक आदर्श को आज सभी मानव स्वीकार कर लें तो मानव समाज में सुख का अवश्य प्रसार हो सकता है।

आर्य समाज के महापुरुषों से सम्बन्धित प्रश्नोत्तरी

श्री सुरेन्द्र मोहन तेजपाल अधिष्ठाता साहित्य विभाग द्वारा प्रसिद्ध विद्वानों के सहयोग से तैयार प्रश्नोत्तरी। आशा है आर्य मर्यादा के पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

प्र.31-मुंशीराम ने 40 हजार रूपये आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के कार्यालय में कब जमा करवा दिए?
उत्तर- 8 अप्रैल 1900 में।

प्र.32- सर्वप्रथम गुरूकुल कैसे खोला गया?
उत्तर- वैदिक पाठशाला के रूप में।

प्र.33-वैदिक पाठशाला के रूप में गुरूकुल कब और कहां खोला गया?
उत्तर-19 मई 1900 को गुजरांवाला में।

प्र.34-महात्मा मुंशीराम गुजरांवाला गुरूकुल से क्यों सन्तुष्ट नहीं थे?
उत्तर-क्योंकि वह वेदमन्त्र के अनुसार नहीं था?

प्र.35- वेदमन्त्र में गुरूकुल का स्थान कैसा कहा गया है?
उत्तर- उपह्वरे गिरीणां संगमे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत।।

प्र.36-गुरूकुल के लिए कौन सा स्थान मुंशीराम को प्रिय लगा?
उत्तर- कांगड़ी ग्राम।

प्र.37-कांगड़ी में गुरूकुल की स्थापना कब हुई?
उत्तर- 4 मार्च 1902 को।

प्र.38-गुरूकुल को लेकर ब्रिटिश शासकों के मन में क्या संदेह था?
उत्तर-कि गुरूकुल में बम बनाए जाते हैं।

प्र.39- संयुक्त प्रान्त के गवर्नर सर जेम्स को किसलिए गुरूकुल में आमन्त्रित किया गया?
उत्तर- वास्तविकता से परिचित कराने के लिए।

प्र.40- गुरूकुल की वास्तविकता क्या थी?
उत्तर- गुरूकुल में बम नहीं अपितु देशभक्त ब्रह्मचारी बनाए जाते हैं।

प्र.41-स्वामी श्रद्धानन्द ने गोरखा पलटन के सिपाहियों से दिल्ली चाँदनी चौक के घण्टा घर पर संगीनों के आगे आकर क्या कहा?
उत्तर- पहले मुझ पर गोली चलाओ फिर सत्याग्रहियों पर चलाना।

प्र.42-गोरखा पलटन ने क्या गोलियां चलाई?
उत्तर- नहीं।

प्र.43- वेद मन्त्रों से जामा मस्जिद की गुम्बद से किस सन्यासी ने हिन्दू-मुस्लिमों को उपदेश दिया?
उत्तर-स्वामी श्रद्धानन्द जी ने।

प्र.44-जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड के पश्चात कांग्रेस के अमृतसर अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष कौन बनाए गए?
उत्तर- स्वामी श्रद्धानन्द जी।

प्र.45-स्वामी श्रद्धानन्द जी का कौन सा कार्य कट्टरपंथी मुस्लिमों को रास नहीं आया?
उत्तर- शुद्धि का कार्य।

प्र.46-अमर हुतात्मा स्वामी जी का बलिदान कैसे हुआ?
उत्तर- 23 दिसम्बर 1926 ।

प्र.47- स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान कब हुआ?
उत्तर- एक मतान्ध मुसलमान ने गोली मार कर हत्या कर दी।

प्र.48- आर्य सन्यासियों में लौह पुरूष की संज्ञा किसे दी जाती है?
उत्तर- स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज को।

प्र.50- स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी का बचपन का क्या नाम था?
उत्तर- केहर सिंह।

प्र.51-केहर सिंह का जन्म कब हुआ?
उत्तर- विक्रम सम्वत् 1934 के पौष मास की पूर्णिमा को।

प्र.52-केहर सिंह का जन्म स्थान क्या है?
उत्तर- लुधियाना का मोही ग्राम।

प्र.53- केहर सिंह के पिता का क्या कहां था?
उत्तर- भगवान सिंह(जाट सिख थे)।

प्र.54-केहर सिंह को आर्य विचारधारा में किस विद्वान् ने दीक्षित किया?
उत्तर- पं. विशन दास आर्य ने।

प्र.55-कितने वर्ष की आयु में केहर सिंह ने सन्यास लिया?
उत्तर- 23 वर्ष।

प्र.56-सन्यास के पश्चात केहर सिंह ने क्या नाम रख लिया?
उत्तर- प्राण पुरी।

प्र.57-प्राणपुरी का नाम स्वतन्त्रानन्द किस कारण प्रसिद्ध हुआ?
उत्तर- स्वतन्त्र प्रवृत्ति के कारण।

प्र.58-निजाम हैदराबाद की दमनकारी नीतियों तथा धार्मिक अधिकारों पर लगे प्रतिबन्धों को किसने हटवाया?
उत्तर- स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने।

प्र.59-स्वामी जी पर कुल्हाड़े का वार कहां हुआ था?
उत्तर- लोहारू में।

प्र.60-कुल्हाड़ा सिर में कितना घुस गया था?
उत्तर-तीन इंच।

प्र.61-स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने किस संस्थान की स्थापना की?
उत्तर- दयानन्द मठ दीनानगर।

पृष्ठ 2 का शेष-अथर्ववेद में मानव...

इसका लेप भी होता है जो कि उपकारी है।

''ऋषभ-ओषध-विशेष से मीठा, शीतल, रक्त-पित्त विरेक-नाशक, वीर्य-श्लेष्मकारी, दाहक्षय ज्वरहारी आदि से छुटकारा दिलाता है एवं बलकारी है।

हिरण के सींग से औषधि-हिरण की नाभि में ''कस्तूरी औषधि'' रहती है।

शीघ्रगामी-हिरण के मस्तक के भीतर मध्यभाग में औषध है, जो कि बड़े बड़े रोगों को नष्ट करता है, जैसे राजरोग, कुष्ठ रोग; पसली आदि की पीड़ा में यह लगाया भी जाता है। सींगों का अग्रभाग पीड़ाओं को ढकेलता है। हिरण के सींग से शरीर व संश का रोग जो हृदय में गुंथा हुआ है उसका नाश होता है।''कस्तूरी-औषधि'' ठण्डे देशों में मनुष्य-शरीर की शीतलता को नष्ट कर उसे गर्म कर देती है।

''रजनी'' ओषधि-एक तरह का पौधा, जो रात को उत्पन्न होता है और भूमि से उखाड़ा जाता है। कुष्ठ-रोगी (गीला एवं सूखा दोनों) के श्वेतपन को और विकृत चिन्ह को निरन्तर नाश करता है। इस ओषधि से रोगी का बिगड़ा हुआ रूप फिर से यथापूर्वक सुन्दर, रूचिर और मनोहर हो जाता है। रात को उत्पन्न हुई औषधि से यह आशय है कि औषधियाँ जैसे गेहूँ, जौ, चावल, अन्न और कमल आदि रोगनिवर्त्तक पदार्थ रात्रि की शीतलता, चन्द्रमा की किरणों से पुष्ट होकर उत्पन्न होते हैं। ओस से हरे-भरे होकर पृथिवी को सुन्दर बनाते हैं। इसी प्रकार मनुष्यों की गर्भाधान क्रिया रात्रि में ही करनी चाहिए। ओषधि आदि पदार्थ पाँच तत्त्वों से बने हैं, तो भी उनके भिन्न-भिन्न आकार और भिन्न-भिन्न गुण हैं, यह मूल संयोग-वियोग क्रिया ईश्वर के अधीन है, वस्तुतः मनुष्य के लिये यह कर्म रात्रि अर्थात् अन्धकार में है। प्रलय-रूपी रात्रि के पीछे, पहिले अन्न आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं, फिर मनुष्य आदि की सृष्टि होती है। मनुष्य इन्द्रिय-निग्रह करके शान्त-चित्त होकर रात्रि में सुखपूर्वक सोवे, निद्रा न भंग हो तो रोग-रहित रहता है। माता-पिता बच्चों को चन्द्रमा के दर्शन कराते हुए सुलावें, जिससे बालकों के शरीर की पुष्टि और नेत्रों की ज्योति बढ़े। सूर्य का प्रकाश आने से भी घर स्वास्थ्यकारक होता है। मीठे व अच्छे वचनों से, शौचा-चार से, 'ओ३म्' शब्द एवं गायत्री आदि मन्त्र के जप से, रोचक कथा, लौरी व गीत आदि के सुनाने से चित्त को शान्ति और शान्ति से कुरोग और कुवासनाओं का नाश होता है, क्योंकि अशुद्धि, मालिनता आदि से छोटे-बड़े क्षुद्र जन्तु उत्पन्न होकर बड़े-बड़े रोगों का कारण बन जाते हैं।

मनुष्य श्वास-प्रश्वास और पंच भूतों के परिज्ञान से, स्पर्श द्वारा रोगों का निदान करके अपने शरीर को रोग-रहित कर पुष्ट करे।

विद्वानों के सत्संग से, आध्यात्मिक पक्ष में परमेश्वर के ज्ञान से और आधिभौतिक पक्ष में अग्नि आदि के प्रभाव से, इन सबके विज्ञान से जो मनुष्य योग्य प्रयोग से अपने शारीरिक एवं आत्मिक शक्ति को बढ़ावे और इनको अनुकूल रखे। वह प्रजावान्, धनवान्, आयुष्मान एवं बलवान् होता है। एक रोग जो हड्डी से उत्पन्न होता है, दूसरा ब्रह्मचर्य के खण्डन और कुपथ्य भोजन से उत्पन्न होता है-इन सब रोगों का निदान वैदिक ज्ञान से करना चाहिए।

मानसिक व शारीरिक पीड़ा, सूर्य के ताप और जल से उत्पन्न ज्वर और पीलिया आदि रोग पाप अर्थात् ईश्वरीय नियम के विरुद्ध आचरण का फल है। जो मनुष्य परमात्मा के नियमों पर चलते हैं, उन्हें भौतिक औषधियों की आवश्यकता ही नहीं होती।

''हम सब लोग प्रयत्न करें कि परमेश्वर की प्रार्थना सदा करते हुए युक्त आहार-विहार से ऐसे स्वस्थ और निरोग रहें कि सब इन्द्रियाँ: नेत्र, मुख, नासिका, मन आदि सौ वर्ष से भी अधिक पूरे दृढ़ और सचेत रहें, जिससे हम अपना कर्त्तव्य जीवन-भर सावधानी के साथ किया करें।''

महर्षि दयानन्द और गौरक्षा

पं.-नन्दलाल निर्भय सिद्धान्ताचार्य, आर्य सदन बहीन, जनपद-पलवल (हरि०)

हमारा प्यारा आर्यवर्त्त (भारत भूमि) ऋषियों-मुनियों त्यागी-तपस्वी विद्वानों का प्यारा देश है। इस देश में संसार के सब देशों से ज्यादा महान् पुरूष पैदा हुए हैं जो ईश्वर भक्त, सदाचारी, परोपकारी थे उन्हीं महान पुरुषों में से एक थे जगतगुरू महर्षि दयानन्द महाराज।

महर्षि दयानन्द वेद प्रचार के बाद गौरक्षा के प्रश्न को ही सबसे अधिक महत्व देते थे। उनके विचार से मानव मात्र का कल्याण वैदिक पथ पर चलने से तो होगा ही इसके साथ ही उसका हित व उपकार गोपालन से ही सम्भव है। इस बात को वे भली-भांति जानते थे कि कृषि जितनी मानवमात्र के लिए जरूरी है उतनी ही जरूरी गोपालन है। इसका कारण कृषि और गोपालन एक दूसरे के पूरक हैं। जब एक मनुष्य कृषि करता रहेगा तब तक यदि वह अपना कल्याण चाहता है तो उसे गो-पालन भी करना पड़ेगा। इसीलिए महर्षि ने गौरक्षा के लिए एक सभा बनाई थी जिसका नाम "गो कृष्णादि रक्षिणी सभा" रखा था। दु:ख का विषय है कि आज मानव ने कृषि कर्म तो चालू रखा किन्तु गोपालन करने का ध्यान कम कर दिया और बैलों की जगह ट्रैक्टरों से जमीन जोतने लगा और गाय के दूध, घी, दही, मलाई की जगह माँस खाना व शराबपीना आरम्भ कर दिया। आज मानव अपने हर स्तर से चाहे व बल हो, बुद्धि हो, या चरित्र हो, गिरता चला गया और आज उसकी स्थिति यह हो गई है कि वह विनाश के कगार पर खड़ा है। किस समय संसार का विनाश हो जावे कोई कुछ नहीं कह सकता। इस बात को महर्षि दयानन्द ने पहले ही अच्छी तरह भाँप लिया था कि मानव मात्र का विनाश या स्तर गिरने के सबसे मुख्य कारण दो ही हैं। पहला वेदों का पढ़ना-पढ़ाना छूट जाना और दूसरा गोपालन पर ध्यान न देना।

पाँच हजार वर्षों पहले जब यह दोनों चीजें अपने पूरे यौवन पर न थीं। तब हर बच्चा चाहे वह राजा का हो या रंक का, पाँच या आठ वर्षों के बाद गुरूकुल में चला जाता था। वहाँ आचार्य की गोद में बैठकर वेदाध्ययन करता था और पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता हुआ आचार्य और गो सेवा का कार्य करता था और शारीरिक, आत्मिक, बौद्धिक व चारित्रिक बल से परिपूर्ण होकर जब पूर्ण यौवन अवस्था प्राप्त करके पच्चीस वर्ष बाद वह गृहस्थ में आता था तब वह अपने गृहस्थ जीवन में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त करते हुए आनन्दित व सुखी बना रहता था। उस समय सब लोग वेद मार्ग पर चलते थे और गऊ के शुद्ध दूध का पान करते थे। तब आपस की कलह, द्वेष, घृणा, लड़ाई, झगड़ा वैमनस्य होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। उस समय सब लोग, सदाचारी, संयमी, परिश्रमी, ईमानदार, कर्त्तव्यपरायण, दयालु, परोपकारी, न्यायकारी आदि मानवीय गुणों से विभूषित होते थे और परस्पर सद्व्यवहार रखते हुए प्रेमपूर्वक रहते थे तब सारा विश्व "वसुधैव कुटुम्बकम्" के समान था। मानो स्वर्ग धरती पर उतर आया हो।

महर्षि दयानन्द वही प्राचीन सुखद व आनन्दपूर्ण स्थिति विश्व में पुन: लाना चाहते थे, इसीलिए उन्होंने नारा दिया था कि 'वेदों की ओर लौटो' यानि वेदों का पढ़ना-पढ़ाना व सुनना-सुनाना पुन: आरम्भ करो, साथ ही गोपालन पर विशेष ध्यान दो। इन दोनों कार्यों के द्वारा ही स्थिति के बदलने का सही उपाय समझकर ऋषि जी ने इन दोनों कार्यों पर विशेष बल ही नहीं दिया बल्कि अपना सम्पूर्ण जीवन ही समर्पित कर दिया। वेद प्रचार के लिए महर्षि ने क्या-क्या किया यह किसी से छुपा नहीं है, इसे सारा संसार जानता है। उन्होंने अपने जीवन में खाना-पीना, सोना-जागना, उठना-बैठना सब कार्यों को गौण समझकर वेद प्रचार करना ही मुख्य कार्य समझा। वेद प्रचार के लिए कितनी ही बार जान को जोखिम में डालकर वेद विरोधियों से लड़ना पड़ा, सैंकडों शास्त्रार्थ किए, सत्रह बार विष पिया, विरोधियों की गालियाँ सुनी, ईंट-पत्थर खाए, मान-अपमान सहा, पहाड़ों व जंगलों की खाक छानी फिर भी वेद प्रचार करने से विचलित व विमुख नहीं हुए। इसी वेद प्रचार के कार्य को आगे बढ़ाने के लिए सन् 1875 ई० में उन्होंने मुम्बई में आर्य समाज की स्थापना की और आर्य समाज के दस नियमों में तीसरा नियम 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना सब आर्यों का यानि सभी श्रेष्ठ पुरूषों का सिर्फ धर्म ही नहीं बल्कि परम धर्म है।" बताकर अपनी अभिलाषा प्रकट करते हुए इस कार्य पर विशेष बल दिया ताकि आर्य समाजी इस कार्य को करना न भूलें।

गाय की रक्षा के लिए महर्षि ने क्या-क्या प्रयास किए इसके बारे में काफी लोग अनभिज्ञ हैं, इसके ऊपर मैंने कुछ प्रकाश डालने का प्रयास किया है, कृपया पाठकगण इससे लाभ उठायें।

महर्षि जी अच्छी प्रकार जानते थे कि वेद जैसे अपनी शिक्षाओं से मनुष्य को चारों पुरूषार्थ धर्म, अर्थ, काम, को परोपकार की भावना से करते हुए मोक्ष को प्राप्त करता है। उसी प्रकार गऊ भी अपने शुद्ध दूध, घी, दही, छाछ से मनुष्य के शरीर को हृष्ट-पुष्ट तथा बुद्धि को शुद्ध व पवित्र बनाती है। जिससे मनुष्य धर्म के कार्य करता है। मनुष्य गऊ के पंचगव्य से अनेकों प्रकार की दवाईयाँ बनाकर तथा बैलों द्वारा कृषि व माल ढोने का काम करके धन उपार्जन करता है तथा शरीर की शक्ति व पवित्र बुद्धि से अपनी सब कामनाऐं (इच्छाएं) पूरी करता है तत्पश्चात् सब काम धर्मानुसार करने से मोक्ष पाने का भी अधिकारी बन जाता है। इसलिए वेद के प्रचार के समान गऊ पालन भी उपयोगी व लाभदायक है। इस बात को महर्षि ने समझा और दोनों की रक्षा के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। सबसे पहले महर्षि ने गौ माता की दयनीय दशा देखकर, 'गोकरूणानिधि' नाम की एक लघु पुस्तिका लिखी, जिसमें गो हत्या पर अपनी हृदय की वेदना ही प्रकट नहीं की बल्कि फूट-फूट कर रोये भी। ईश्वर की न्याय-व्यवस्था पर पूर्ण आस्था व विश्वास रखते हुए भी ईश्वर को यहाँ तक कोसा कि "हे परमेश्वर! तू क्यों इन पशुओं पर जो कि बिना अपराध मारे जाते हैं, दया नहीं करता ? क्या उन पर तेरी प्रीति नहीं है ? क्या इनके लिए तेरी न्याय सभा बंद हो गई है ? क्यों नहीं इनकी पीड़ा छुड़ाने पर ध्यान देता और क्यों इनकी पुकार नहीं सुनता। क्यों इन मांसाहारियों की आत्माओं में दया प्रकाश कर निष्ठुरता, कठोरता, स्वार्थपन और मूर्खता आदि दोषों को दूर नहीं करता? जिससे ये इन बुरे कर्मों से बचें।"

गऊ मानवमात्र के लिए कितनी उपयोगी व जरूरी है, वह अपनी उम्र में कितने हजार लोगों का पालन-पोषण कर देती है, यह सब दर्शाया है। यदि गऊ के हत्यारे इस पुस्तिका को पढ़ लेवे और चिन्तन-मनन करें तो कोई पत्थर हृदय ही होगा जो पिघल न जाए। खेद का विषय है कि आज की सभी गौ हत्यारी सरकारें जो गोपालक कृष्ण को भगवान का रूप मानती हैं और महर्षि दयानन्द, महात्मा गाँधी और विनोबाभावे के आदर्शों पर चलने वाली कहलाती हैं, फिर भी गौ हत्या बंद नहीं करतीं। इसीलिए ये सभी सरकारें सिर्फ निन्दनीय ही नहीं, भर्त्सना करने योग्य हैं।

महर्षि दयानन्द जी ने सबसे पहली गऊशाला राव-युधिष्ठिर रेवाड़ी नरेश के द्वारा रेवाड़ी में खुलवाई थी। इसके साथ ही हजारों गऊशालाएं पूरे भारत में चल रहीं हैं। यह सब महर्षि दयानन्द महाराज की कृपा का फल है। अत: हम सबको गौ भक्त बनकर महर्षि दयानन्द महाराज का सपना साकार करना चाहिए। इसी में विश्व की भलाई है।

तुलसी के गुण

ले.-डॉ. उर्मिला किशोर

"तुलसी" के गुणों को हमारे ऋषि-मुनियों ने हजारों वर्ष पूर्व जान लिया था, इसीलिये उन्होंने इसे धार्मिक संस्कारों से जोड़कर इसकी पूजा प्रारम्भ की। वही परम्परा आज तक चली आ रही है। 'तुलसी' कल्याण स्वरूपा है। तुलसी से पर्यावरण शुद्ध होता है। समाज से रोम-विकार दूर करने के लिए तुलसी एक साधन है। तुलसी की जड़, तने, पत्तों और मंजरी से अनेक आयुर्वैदिक औषधियाँ बनायी जाती है। आयुर्वेद में यह अनेक रोगों की चिकित्सा में काम आती है। तुलसी के पत्ते जल में डालकर स्नान करने से शरीर अनेक रोगों से बचा रहता है। त्वचा में कान्ति और शरीर में स्फूर्ति आती है। मीठी तुलसी से आप डेंगू जैसी भयंकर बिमारी से भी बच सकते हैं। इसकी सुगन्ध से डेंगू के मच्छर दूर भागते हैं। मीठी तुलसी 'को वन-तुलसी' या 'नियाजबो' भी कहते हैं। इसकी पत्तियाँ अन्य तुलसी से काफी बड़ी और हरे रंग की होती है। इसके फूल सुगन्धित और हरे बैंगनी रंग के होते हैं। दिल्ली में इसे 'रामा-तुलसी' भी कहते हैं। यह एंटीबायोटिक तथा एंटीवायरस होती है। इसकी ३-४ पत्तियाँ खाने से रक्तचाप भी नियन्त्रित होता है। मीठी तुलसी गठिया, पेशाब में जलन, हैवाटाइटिस पेट का अल्सर जैसी बिमारियों में राहत देती है। इससे थकान, तनाव, उल्टी, दस्त, अरूचि, हिचकी, सर्दी-जुकाम, पेट-सम्बन्धी रोग और मधुमेह में लाभ होता है। सर्दियों में इसके इस्तेमाल से सेहत में लाभ होता है। चिकिन-गुनिया में तुलसी लाभकारी होती है। रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में भी तुलसी के पत्ते बहुत लाभकारी होते हैं।

आर्य महासम्मेलन में शामिल होने सम्बन्धी आर्य समाज मोगा में बैठक

25 अक्तूबर से 28 अक्तूबर 2018 तक नई दिल्ली में होने वाले आर्य महासम्मेलन में शामिल होने के सम्बन्ध में एक बैठक का आयोजन आर्य समाज मोगा में किया गया। इस बैठक की अध्यक्षता करते हुये आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महामंत्री श्री प्रेम भारद्वाज जी, सभा कोषाध्यक्ष श्री सुधीर शर्मा जी, रजिस्ट्रार श्री अशोक परूथी जी एडवोकेट, श्रीमती इन्दु पुरी जी मोगा। जबकि चित्र दो एवं तीन में निकटवर्ती आर्य समाजों के पदाधिकारी एवं सदस्य भाग लेते हुये। इस बैठक में आर्य महासम्मेलन में शामिल होने के लिये लोगों में भारी उत्साह पाया गया।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के तत्वावधान में दिनांक 15 सितम्बर 2018 को आर्य समाज मोगा में निकटवर्ती सभी आर्य समाजों के पदाधिकारियों की एक बैठक का आयोजन किया गया जिसमें दिनांक 25 अक्तूबर से 28 अक्तूबर 2018 तक दिल्ली में होने वाले आर्य महासम्मेलन में पधारने के लिये आह्वान किया गया। सर्वप्रथम बैठक प्रारम्भ होने पर आर्य माडल सी.सै.स्कूल मोगा एवं एम.डी.ए.एस माडल स्कूल के विद्यार्थियों ने उपस्थित मान्य महानुभावों का गीत गाकर हार्दिक स्वागत किया। सभा में संस्कृत भाषा की रक्षार्थ सम्पूर्ण भारत में अनिवार्य रूप से पढ़ाने की व्यवस्था, आर्य समाज के प्रचार प्रसारार्थ विशेष परियोजना एवं विशेषकर आर्य महासम्मेलन को सफल बनाने में प्रत्येक आर्य समाज के माध्यम से उपस्थिति सुनिश्चित बनाने की चर्चा रही। इस सभा में आर्य समाज बठिंडा, आर्य समाज बरनाला, आर्य समाज कोटकपूरा, आर्य समाज फरीदकोट, आर्य समाज फिरोजपुर छावनी, आर्य समाज फिरोजपुर शहर, आर्य समाज जीरा, आर्य समाज तपा, आर्य समाज धूरी, आर्य समाज जैतों के पदाधिकारी सोत्साह पहुंचे। इस बैठक को आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महामंत्री श्री प्रेम भारद्वाज जी, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के कोषाध्यक्ष श्री सुधीर शर्मा जी, आर्य विद्या परिषद पंजाब के रजिस्ट्रार श्री अशोक परूथी जी एडवोकेट ने सम्बोधित किया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महामंत्री श्री प्रेम भारद्वाज जी ने विस्तृत जानकारी देते हुये कहा कि इस महासम्मेलन में भाग लेने के लिये शीघ्र अति शीघ्र निश्चय कर सभा को संख्या सूचित करें ताकि वहां ठहरने की उचित व्यवस्था की जा सके। उपस्थित आर्यजनों ने सम्मेलन में बारे में भी अपने अपने सुझाव दिये। उपर्युक्त विषयों से सम्बन्धित अनेक बिन्दुओं पर परिचर्चा सार्थक रही। अनन्तर सभी ने प्रीति भोज ग्रहण किया। इस बैठक में सभी उपस्थित आर्य जनों द्वारा आर्य महासम्मेलन में भाग लेने के लिये बहुत उत्साह दर्शाया गया।

संस्कृत वैज्ञानिक भाषा नहीं बल्कि सम्पूर्ण विज्ञान है

आर्य समाज, आर्य समाज चौक पटियाला में संस्कृत दिवस का आयोजन किया गया। इसमें भाग लेने वाले प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान प्राप्त करने वाले बच्चों को पारितोषिक वितरण किये गये। इस अवसर पर लिया गया चित्र एवं दूसरे चित्र में मंच पर विराजमान महानुभाव।

आर्य समाज मंदिर, आर्य समाज चौक पटियाला में श्रावणी उपाकर्म एवं संस्कृत दिवस के मौके पर वेद पाठ एवं संस्कृत श्लोकोच्चारण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें पटियाला जिला के विभिन्न प्रतिष्ठित स्कूलों मुख्यत: डी.ए.वी. स्कूल पटियाला, समाना, नाभा, ककराला, चनारथल तथा एस.डी.आर्य गर्ल्ज, दयानन्द माडल स्कूल, सरकारी स्कूल अरनोली, गुलाचीका, श्री सरस्वती संस्कृत कालेज खन्ना आदि के तकरीबन 80 बच्चों ने भाग लिया। सभी बच्चे उत्साह से भरे हुये थे तथा पूर्ण तैयारी के साथ आए थे। उन्होंने अपने बेहतरीन प्रदर्शन से उपस्थित सभी लोगों का मनमोह लिया। बच्चों की प्रस्तुति से पूरा समय हाल तालियों की गड़गड़ाहट से गूंजता रहा। डी.ए.वी. स्कूल समाना की टीम ओवरआल चैम्पियन रही। इससे पहले इस कार्यक्रम का शुभारम्भ वैदिक हवन यज्ञ के साथ किया गया जिसमें सभी आर्यजनों ने यज्ञाग्नि में आहुतियां प्रदान कर परमपिता परमात्मा से आशीर्वाद प्राप्त किया। डा. महेश गौतम, प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान ने इस समारोह की अध्यक्षता की तथा अपना शुभ आशीर्वाद देते हुये कहा कि बच्चों में प्रतिभा की कोई कमी नहीं है। अध्यापक वर्ग को केवल उन्हें थोड़ी दिशा दिखाने की जरूरत है। भारतीय संस्कृति को बचाने के लिये संस्कृत का पठन पाठन बहुत जरूरी है। प्रिंसीपल श्री विवेक तिवारी ने कहा कि वर्तमान समय में संस्कृत भाषा का सबसे ज्यादा पठन पाठन जर्मनी तथा अमरीका में हो रहा है। भारत में भी इसे बढ़ावा देना होगा और आर्य समाज पहले से ही संस्कृत एवं संस्कृति को बढ़ावा देने के लिये कार्यरत है। श्री एस.आर.प्रभाकर ने कहा कि महर्षि दयानन्द सरस्वती का भी यही मन्तव्य है कि संस्कृत में ही भारतीय संस्कृति बसती है। प्रिंसीपल मंडल, डा. ओम देव आर्य, डा. ओमान दीप तथा प्रो.वीरेन्द्र संस्कृत विभाग पंजाबी यूनिवर्सिटी ने जज के रूप में भूमिका निभाई। आर्य समाज के प्रधान श्री राज कुमार सिंगला जी ने सब का धन्यवाद करते हुये कहा कि आर्य समाज संस्कृत को बढ़ावा देने के लिये आगे भविष्य में और ऐसे कार्यक्रम करता रहेगा। कार्यक्रम का संयोजन बिजेन्द्र शास्त्री ने किया। इस अवसर पर प्रिंसीपल मनोज शर्मा, प्रिं. संतोष गोयल, वीरेन्द्र सिंगला, वेद प्रकाश तुली, जतिन्द्र शर्मा, परवीण कुमार आर्य, कर्नल आनन्द मोहन सेठी, गुलाब सिंह, बलदेव किशन वर्मा, बैजनाथ, रमेश गंडोत्रा, हर्षवर्धन, संगीता सिंगला, नरेश बाला, सरिता आर्य, स्वराज शर्मा, सोनम, अनेक गणमान्य व्यक्ति मौजूद रहे।

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।